दिव्य स्थली "युगतीर्थ शांतिकुंज" का चयन

महाशक्ति की लोकयात्रा

दिव्य स्थली “युगतीर्थ शांतिकुंज” का चयन

“महाशक्ति के दिव्य साधना स्थल” के रूप में शांतिकुंज के निर्माण की परिकल्पना परमपूज्य गुरुदेव की दूसरी हिमालय यात्रा (1960-61) के समय ही तैयार हो गई थी। उनकी मार्गदर्शक सत्ता ने इसकी आवश्यकता एवं इस तरह के निर्माण की स्पष्ट रूपरेखा से उन्हें इस विशिष्ट अवधि में अवगत करा दिया था। हिमालय की गहनताओं में युगों से तप कर रहे दिव्य देहधारी ऋषियों की सम्मति भी यही थी। गुरुदेव की यह दूसरी हिमालय यात्रा पहली बार की तुलना में कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण थी। इस बार उन्हें अपने मार्गदर्शक के साथ हिमालय की दिव्य ऋषि सत्ताओं के न केवल दर्शन मिले बल्कि उनसे चिंतन-परामर्श का विशेष अवसर भी मिला। सम्पूर्ण विश्व के विभिन्न घटनाचक्रों एवं इसकी भावी नियति पर विशेष चर्चा हुई । भारत भूमि के संकटपूर्ण वर्तमान एवं इसके दीर्घकालिक उज्ज्वल भविष्य का उन्हें दर्शन कराया गया। साथ ही इस संबंध में गुरुदेव की भूमिका भी निर्धारित की गई और इस भूमिका को निभाने के लिए अति अनिवार्य समझी जाने वाली तपश्चर्या की कुछ गुप्त प्रक्रियाएं उन्हें सुझाई एवं समझाई

गईं जिससे ब्रह्मांडीय ऊर्जा(cosmic energy) का उज्ज्वल भविष्य की संरचना के लिए आवश्यक प्रयोग एवं उपयुक्त नियोजन किया जा सके।

इसी समय यह भी निर्धारण किया गया कि आगामी दिनों गुरुदेव की यह भूमिका पूरी तरह से परोक्ष (indirect) होगी। जीवन के 60 वर्ष पूरा होने के बाद वे हिमालय के ऋषितंत्र के साथ मिलकर गहन आध्यात्मिक प्रयोग करते हुए धरती के नवीन भाग्य एवं भविष्य के निर्माण हेतु प्रयत्नशील रहेंगे। यही कारण है कि युगतीर्थ शांतिकुंज की स्थापना 1971 में की गयी जब गुरुदेव अपनी आयु के 60 वर्ष पूरा करते हैं। प्रत्यक्ष दायित्व (Direct responsibility) महाशक्ति के रूप में माताजी स्वयं संभालेंगी। इस प्रत्यक्ष दायित्व को पूरी तरह से संभालने से ही उनके अवतार कार्य का प्रारंभ और विस्तार होगा। उनके इस कार्य के लिए मथुरा बहुत अधिक उपयुक्त स्थान नहीं है। महाशक्ति ने अपनी हर अवतार लीला में गंगा की गोद, हिमालय की मनोहर छाया को ही तपस्थली के रूप में चुना है। इस बार भी यही ठीक होगा। वह जिस भूमि को अपने दिव्य साधना स्थल के रूप में चुनेंगी, वहीं स्थान भविष्य में संपूर्ण विश्व के लिए ऊर्जा अनुदान का केंद्र बनेगा। यह

पक्तियां युगतीर्थ शांतिकुंज के बारे में ही लिखी जा रही थीं और हम आज 50 वर्ष बाद भी इन पंक्तियों को चरितार्थ होते देख रहे हैं। अपने इस निर्धारण में ऋषितंत्र ने यह भी स्पष्ट किया, इस युग के लिए विधि ने जो युग-प्रत्यावर्तन का विधान रचा है, उसमें "केंद्रीय भूमिका महाशक्ति स्वयं निभाएगी"। ऋषिगण एवं दिव्य लोगों की देव शक्तियों महाशक्ति (माताजी) का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में सहयोग करेंगी।

हिमालय के ऋषितंत्र के निर्धारण के अनुरूप गुरुदेव ने आवश्यक कार्य योजना बनाते हुए अपनी तपश्चर्या की अवधि पूरी की और उन दिव्य विभूतियों से अनुमति लेकर मथुरा वापस लौटे। आगामी हिमालय यात्रा से पहले गुरुदेव को कितने ही कार्य पूर्ण करने थे, उनके पास पास केवल 10 वर्ष का समय था। घर-परिवार की जिम्मेदारियों के साथ गायत्री तपोभूमि की व्यवस्था को भी चुस्त-दुरुस्त बनाना था। हिमालय से वापिस आने पर, गुरुदेव माताजी को कुछ अधिक विस्तार से बताते, माताजी ने पहले ही कह दिया कि मुझे आपका और हिमालय में तपस्यालीन पूज्य ऋषियों का प्रत्येक आदेश स्वीकार है। गुरुदेव जानते थे कि माताजी उनकी अंतर्चेतना में होने वाली प्रत्येक हलचल एवं स्पंदन (vibration)

को अपने अंतःकरण में अनुभव करती रहती हैं, इसलिए बिना बताए माताजी के सब कुछ समझ जाने पर गुरुदेव को तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। हाँ इतना अचरज जरूर हुआ कि वे मथुरा में फैले अपने ममता के धागों को इतनी तेजी से समेटने के लिए कैसे तैयार हो गईं। गुरुदेव अच्छी तरह से जानते थे कि माताजी महाशक्ति हैं,अगर उन के भीतर ममता की शक्ति है, तो दृढ़ता की शक्ति भी है। अगर वह भावस्वरूपा हैं, तो संकल्पमयी भी हैं। शक्ति के जितने भी स्वरूप हैं, सब उनकी आत्मचेतना में समाहित हैं। जीवन के विविध रूप उन शक्तिमयी का स्पर्श पाकर स्वयं ही शक्ति स्रोत में बदल जाते हैं। ममतामयी की अगाध ममता में दुर्बलता का कोई नामोनिशान नहीं है। न वे स्वयं कभी दुर्बल होती हैं और न ही अपने बच्चों को दुर्बल होते देखना चाहती हैं।

माताजी के इस स्वरूप- सत्य से सुपरिचित गुरुदेव ने नई दिशा में सोचना शुरू कर दिया। गुरुदेव की दैवी योजना को पूरा करने के लिए देव शक्तियां स्वयं उपयुक्त पात्रों को जुटाने लगी थीं। चार-पांच वर्षों में ही गायत्री तपोभूमि को संभालने व भलीप्रकार चलाने के लिए पं. लीलापत शर्मा, वीरेश्वर उपाध्याय, द्वारिका प्रसाद चैतन्य आदि समर्पित व सुपात्र कार्यकर्त्ताओं की टीम आ

जुटी। इन सभी लोगों के लिए गुरुदेव व माताजी आराध्य थे। उनकी प्रत्येक इच्छा हर रूप में उन्हें स्वीकार थी। विदाई सम्मेलन जो 17 जून से 20 जून को होना निश्चित हुआ था उसकी विराट व्यवस्था तंत्र भी इन सबने संभाल लिया।

एक तरफ मथुरा की भावी व्यवस्था का नियोजन करना और दूसरी तरफ शांतिकुंज के लिए उपयुक्त भूमि खरीदने का कार्य भी करना बाकी था। ध्यानस्थ भावदशा में गुरुदेव एवं माताजी दोनों ने ही देवभूमि हरिद्वार में स्थित विशिष्ट स्थान को पहचान लिया था, उन्होंने इस विशिष्ट स्थान से आध्यात्मिक ऊर्जा की दिव्य तरंगों को विकीर्ण (radiate) होते हुए अनुभव किया था। उन दोनों ने यह भी जान लिया था कि हजारों वर्षों पूर्व इसी दिव्य भूमि में कहीं देवमाता गायत्री युगशक्ति के रूप में महर्षि विश्वामित्र के अंतःकरण में अवतरित हुई थीं। माता गायत्री के इस अवतरण ने ही महर्षि विश्वामित्र को “ब्रह्मर्षि” बनाया था।

महर्षि और ब्रह्मऋषि में क्या अंतर् है ?

महर्षि एक साधारण ऋषि को कहते है जिसके पास कुछ सिध्दियां और भक्ति एवं ज्ञान हो। जैसा कि नाम से ही पता चल रहा

है महर्षि यानि महान ऋषि। ठीक इसी प्रकार परम तेजस्वी, भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुंचने वाले मुनि को ब्रह्मर्षि कहा जाता है। वे हमेशा लोककल्याण के कार्यों में ही लगे रहते है। उनकी भक्ति और तपस्या का एकमात्र उद्देश्य जनता की भलाई करना होता है। रामायण के संदर्भ में देखा जाए तो विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि विश्वामित्र कहकर ही संबोधित किया जाता था। और वाल्मीक जी को महर्षि वाल्मीकि कहा जाता था।

युगतीर्थ शांतिकुंज की पावन भूमि की तलाश

हरिद्वार की पावन भूमि में गुरुदेव ने अत्यधिक आध्यात्मिक आलोक (प्रकाश) को उफनते-उमड़ते और फैलते हुए देखा था लेकिन ध्यान की प्रगाढ़ता में अनेकानेक आध्यात्मिक अनुभूतियों

को स्फुरित करने वाली यह जगह हरिद्वार में ठीक-ठीक कहां है यह जानना अभी बाकी था। इसे जानने के लिए गुरुदेव ने अपनी यात्रा की तैयारी की। माताजी के अनुरोध पर वह अपने बड़े पुत्र ओमप्रकाश से गुड़गांव में मिलते हुए गाजियाबाद आए। यहां उनके बड़े जामाता रामेश्वर उपाध्याय रहते थे। उपाध्याय जी ने अपने देवतुल्य श्वसुर को आते हुए देखकर उनका आगे बढ़कर स्वागत किया। उस समय उनके हाथों में एक छोटा बिस्तर और लोहे की संदूकची थी। गुरुदेव ने अपनी संदूकची खोलकर उन्हें माताजी द्वारा भेजी हुई छोटी-मोटी चीजें सौंपी और आगे के कार्यक्रम के बारे में बातें कीं। सारी बातों को सुनकर उपाध्याय जी उनके साथ हो लिए। शाम की ट्रेन से दोनों ने हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया। हरिद्वार पहुंचकर ये दोनों लोग हर की पौड़ी और भीमगोड़ा के बीच गंगा के सामने वाली धर्मशाला में ठहरे। बाद में उन्होंने अनेक एजेंटों से मिलकर कई जगहों को देखा। इन जगहों को देख लेने के बाद गुरुदेव ने इन लोगों से सप्त सरोवर के पास कोई भूमि बताने के लिए कहा। गुरुदेव की इस बात पर पहले तो एजेंटों ने हरिद्वार शहर से इतनी दूर की भूमि के बारे में काफी परेशानियां बताईं। बाद में दबाव देने पर वे उन्हें लेकर सप्त सरोवर के पास पहुंचे। सप्त

सरोवर से थोड़ी दूर चलने पर गुरुदेव ने उस स्थान को पहचान लिया जिसे उन्होंने माताजी के साथ अपनी साधना की प्रगाढ़ दशा में अनुभव किया था। यह भूमि काफी दलदली थी। एक छोटा पहाड़ी झरना भी इसके बीच में बह रहा था। जब गुरुदेव ने इस भूमि को पसंद किया तो एजेंट उनका मुंह देखता ही रह गया। उसने काफी समझाने की कोशिश की लेकिन गुरुदेव ने उसकी कोई बात ध्यान देकर नहीं सुनी क्योंकि वह उस समय भी अपनी दिव्य दृष्टि से इस भूमि में सघनता से छाए हुए आध्यात्मिक प्रकाश को देख रहे थे। उन्होंने एजेंट से केवल इतना कहा कि हमें यही भूमि लेनी है, आप इसके लिए उपयुक्त व्यवस्था करें।

जब हम यह पंक्तियाँ लिख रहे हैं तो घीया मंडी मथुरा स्थित अखंड ज्योति संस्थान वाली बिल्डिंग की बात स्मरण हो आयी। जब इस बिल्डिंग को किराये पर लेने के लिए बातचीत चल रही थी तो सभी ने बिल्डिंग लेने को मना किया था क्योंकि यह एक भूतहा बिल्डिंग थी लेकिन गुरुदेव ने कहा था कि हम भूतों से मित्रता कर लेंगें, वह हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। भला भगवान् के लिए भी कोई समस्या हो सकती है क्या ? शांतिकुंज के लिए भूमि खरीदने के समय भी कुछ ऐसा ही हुआ।

एजेंट के विरोध के बावजूद गुरुदेव ने इस दलदल भरी भूमि को खरीदने का निर्णय लिया और जुलाई 1968 में सप्त सरोवर क्षेत्र में 19 हजार रुपये में डेढ़ एकड़ भूमि खरीद ली गई। यह वोह दिव्य भूमि थी जहाँ पर बाद में महाशक्ति की दिव्य साधनास्थली गायत्री तीर्थ शांतिकुंज को अवतरित होना था। भूमि खरीदने के थोड़े समय बाद यहां पर प्रारंभिक निर्माण कार्य शुरू हो गया। गुरुदेव बीच-बीच में मथुरा से आकर यहां की व्यवस्था देख जाते थे। साथ ही वे माताजी के साथ मथुरा की व्यवस्थाओं को भी अंतिम रूप दे रहे थे। घर-परिवार की सभी ज़िम्मेदारियाँ भी इसी समय निपटाई जानी थीं। इस क्रम में उन्होंने सबसे पहले पुत्र सतीश (मृत्युंजय शर्मा) का विवाह किया और उन्हें अखण्ड ज्योति संस्थान का कार्यभार सौंपना आरंभ कर दिया। बहू निर्मल ने आकर माताजी के गृहकार्य में सहयोग देना शुरू कर दिया। माताजी उसे घर की सारी ज़िम्मेदारियाँ सौंपने लगीं। समस्त व्यवस्थाओं व ज़िम्मेदारियाँ के अंतिम चरण में पुत्री शैलो (शैलबाला) के लिए उन्होंने सुयोग्य, संस्कारवान वर की खोज कर ली। इस खोज के पीछे गुरुदेव- माताजी की गहन भविष्य दृष्टि थी। नियति के लेख में माताजी की पुत्री का विवाह और शांतिकुंज के

प्रारंभिक दिनों की शुरुआत लगभग एक ही समय होना लिखा था। शायद इसके पीछे महाशक्ति का स्वसंकल्प भी क्रियाशील था।

शांतिकुंज के प्रारंभिक दिनों की शुरुआत के कुछ समय पहले ममतामयी माताजी के मातृत्व को बड़ी कठिन परीक्षा से गुजरना पड़ा। परीक्षा के ये पल उफनती-उमड़ती, विकल-विह्वल भावनाओं से घिरे थे। मथुरा छोड़ते समय गुरुदेव ने विदाई समारोह का आयोजन किया था ताकि परिजन उनके तीसरी बार (1971) हिमालय जाने से पूर्व मिल सकें,अपने मन की कह सकें और उनके मन की सुन सकें। यह हिमालय यात्रा पिछली सभी यात्राओं की तुलना में असाधारण थी। इसमें यह निश्चित नहीं था कि गुरुदेव वापस लौटेंगे यां अपनी मार्गदर्शक सत्ता की आज्ञानुसार वहीं उनके पास रहकर विश्वकल्याण के लिए तप करेंगे। परम पूज्य गुरुदेव के लिए यह विदाई बहुत ही हृदय विदारक थी क्योंकि गुरुदेव उनसे बिछुड़ रहे थे जिन्हें उन्होंने सदा अपना अंग-अवयव माना, जिन्हे अपने प्राणों के अनुदान देकर पाला। अपने हृदय की इस व्यथा को वह पिछले वर्ष -डेढ़ वर्ष से अखण्ड ज्योति के पृष्ठों में लिखकर परिजनों को अवगत भी कराते रहे थे।

हमारे पाठक इन वर्षों के यह ऐतिहासिक अंक पढ़ सकते हैं, सभी ऑनलाइन उपलब्ध हैं। हमने तो कई बार इन अंकों को पढ़ा और अपनी अश्रुधारा को परमपूज्य गुरुदेव,वंदनीय माताजी के श्रीचरणों में अर्पित किया।

भावमयी माताजी सब कुछ सहकर भी मौन थीं,परन्तु उनके हृदय की व्यथा गुरुदेव से असंख्य एवं अनंत गुना गहरी थी। सबसे पहले तो वे एक मां थी जिसके ह्रदय में उमड़ने वाली भावनाएं शायद समुद्र से भी गहरी और आकाश से भी अधिक व्यापक थीं। माताजी का संपूर्ण अस्तित्व करुण, कोमल संवेदनाओं का ही घनीभूत पुंज था, उन भावमयी जगदंबा को इन दिनों एक के बाद एक "भावनात्मक आघात" झेलने पड़ रहे थे। सबसे पहले तो उन्हें अपनी कोख से जन्मी लाड़ली बेटी शैलो (शैलबाला, जीजी) की विदाई करनी थी। गायत्री जयंती (3 जून, 1971) को हुई यह शादी उनके लिए संतुष्टि और अश्रुओं से भरी थी । संतुष्टि इसलिए थी कि वह अपनी बेटी के ससुराल के प्रत्येक सदस्य के गुणों के बारे में सुपरिचित एवं निश्चिंत थीं, उन्हें मालूम था कि उनके जामाता डॉ. प्रणव पंड्या एक सुयोग्य पात्र हैं, उनमें समस्त दैवी संभावनाएं विद्यमान हैं,उनके सान्निध्य में पुत्री सब तरह से सुखी रहेगी, अपने

जीवन की पूर्णता प्राप्त करेगी लेकिन इस संतुष्टि के साथ ही माताजी यह भी चिंता थी कि जब उनकी लाड़ली बेटी ससुराल से पहली बार विदा होकर मायके वापस लौटेगी तो वह उसके स्वागत के लिए मथुरा में नहीं होंगीं,उसे छाती से लिपटाकर, हृदय में उमड़ते हुए प्यार को उस पर उड़ेल न पाएंगी क्योंकि उस समय वह गंगा की गोद और हिमालय की छाया में बनी “दिव्य साधना स्थली शांतिकुंज” में एकांत तप कर रही होंगी। बात केवल बेटी से अलग होने तक सीमित न थी, उन्हें तो बेटे और बहू से भी विदा होना था जिन पर कच्ची उम्र में अखण्ड ज्योति संस्थान का गुरुतर भार सौंपकर वे जा रही थीं। बेटे सतीश (मृत्युंजय शर्मा) को उस समय तक काम का कोई खास अनुभव नहीं था। बहू निर्मल भी अभी घर की सारी बातों पर प्रायः उन्हीं पर निर्भर थी। बहु के लिए अम्मा जी (माताजी) ही सब कुछ थीं परंतु मां को अपने इन बच्चों से अलग होना ही था। विदा तो उन्हें अपनी इस छोटी-सी सुपौत्री गुड़िया से भी लेनी थी जो अभी मुश्किल से दो साल की हुई थी, जिसने हाल ही में जैसे-तैसे नन्हे कदमों से चलना सीखा था, जो बड़ी मुश्किल से अटक-अटककर उन्हें अम्माजी कह पाती थी, जिसके लिए उनकी गोद ही सारा संसार था। इस नन्ही सी बच्ची

को यदि वे थोड़ी देर के लिए भी अलग करतीं तो वह बिलख उठती थी, उसकी बड़ी-बड़ी आंखें आंसुओं का झरना बन जाती थीं । भावमयी माताजी को स्वयं बिलखते हुए इन सभी बिलखते हुए बच्चों से अलग होना था।

जिंदगी की अगणित पीड़ाओं को बड़ी आसानी से हंसकर सहने वाली माताजी को उनकी विकल भावनाएं इन दिनों विह्वल किए हुए थीं। अपने साथ रहने वाले बच्चों के अलावा विश्व जननी के वे बच्चे भी थे जो हर पल उन्हें माताजी-माताजी कहते हुए थकते न थे, जिन्हें सुख में, दुःख में, संकट में, विपन्नता में केवल अपनी मां को ही पुकारना आता था, जिन्हें इस भरे-पूरे संसार में केवल अपनी मां पर ही भरोसा था। ऐसे अनेकों बच्चे इस समय उन्हें विदाई देने आए हुए थे, उन सभी की आंखें भीगी और भरी थीं, उम्र का भेद भले ही हो, लेकिन भावनाओं का कोई भेद न था। हर एक की भावनाएं शायद व्याकुल होकर यही कह रही थीं कि “पिता हमें छोड़कर महातप के लिए हिमालय जा रहे हैं और माँ एकांत साधना में जा रही है।” कोई कुछ भी बोल नहीं रहा था लेकिन सभी रो रहे थे, बिलख रहे थे, सब के मन-प्राण में महा-हाहाकार मचा हुआ था। अपनी असंख्य संतानों की इस हालत से

जगदंबा विह्वल, व्याकुल और विकल थीं। अपनी प्राणप्रिय संतानों को इस तरह हिचकियों के हिचकोले खाते हुए देख कोई सामान्य मां भी शांत नहीं रह सकती,फिर वे तो भावमयी भगवती थीं। बच्चे ही उनके लिए उनका जीवन थे। वेदना की गहरी टीस को अपने में समेटे असंख्य हृदय अपनी मां को उनकी "एकांत साधना" के लिए विदा दे रहे थे। सभी को मालूम था कि वे हरिद्वार में रहेंगी। बहुत जरूरत पड़ने पर उनसे संपर्क हो सकता है, परंतु उस समय हरिद्वार में मथुरा जैसी सुगमता तो न थी।

एक और महाविछोह :

विछोह के इस करुण अधिपत्य में एक महाविछोह और भी था। विदाई की इस महाघड़ी में जब सभी विदा दे रहे थे, माताजी को भी अपने आराध्य को विदा करना था। यह ठीक था कि उनकी विदाई मथुरा में न होकर हरिद्वार में शांतिकुंज आकर होनी थी और गुरुदेव को सभी से विदा लेकर माताजी के साथ शांतिकुंज तक जाना था। उमड़ते, छलकते, बिखरते और सर्वव्यापी बनते अश्रुओं के बीच गुरुदेव और माताजी की लाड़ली सुपुत्री शैलो अपने सौभाग्य सिंदूर डॉ. प्रणव पंड्या एवं ससुराल के सदस्यों के साथ विदा हुई। अपनी उमड़ती हुई व्याकुलता के महातूफान के बवंडर

भरे चक्रवात के साथ एक-एक करके सारे परिजन भी विदा हुए। गायत्री तपोभूमि के कार्यकर्त्ताओं को तो पं. लीलापत शर्मा के मार्गदर्शन में वहीं रहकर कर्त्तव्य साधना करनी थी। उनकी भावनाएं कितनी भी छटपटाई हों लेकिन श्रीराम एवं माता भगवती के प्रति उनकी मर्यादा साथ चलने की इजाज़त नहीं दे रही थीं। प्रभु का अनुशासन शिरोधार्य करके वे सब वहीं कर्म निरत हो गए।

गुरुदेव के साथ ममतामयी मां ने शांतिकुंज के लिए प्रस्थान किया। साथ में वर्षों की तप साधना से सिद्ध अखण्ड दीपक को संभाले हुए दो-तीन कार्यकर्त्ता थे। यह यात्रा भी समाप्त हुई। शांतिकुंज में गुरुदेव कुछ दिन रहे भी लेकिन आखिर में माताजी को उन्हें तप के लिए हिमालय की ओर विदा करना ही था। घर-परिवार के सदस्य, स्वजन-परिजन, एक-एक करके नहीं, एक साथ सब छूटे, सभी को बिना एक पल की देर लगाए सब कुछ छोड़ दिया। परम पूज्य गुरुदेव सुदूर हिमालय की गहनताओं में तप करने के लिए जा रहे थे। यह विछोह बड़ा ही करुण था । विदाई के ये पल बड़े ही वेदनामय थे लेकिन इस करुण वेदना को हर हाल में सहना ही था। वंदनीय माताजी के लिए विश्वहित में अपने आराध्य की विदाई के

इस महाविष को शांत भाव से पी जाने के अलावा और कोई चारा न था। एक दिन प्रातः गुरुदेव हिमालय चले गए। गुरुदेव ने जिस समय प्रस्थान किया, उस समय माताजी के इलावा अन्य सभी लोग सोए हुए थे। जगने पर माताजी ने सबको संभाला, दिलासा दी, सांत्वना दी। माताजी की आश्वस्ति पाकर सब अपने-अपने घर चले गए। केवल वही दो-तीन लोग बचे, जिन्हें विश्वजननी माताजी के साथ रहकर उनकी सेवा का सौभाग्य मिला था। उन्हीं के साथ माताजी अपने आराध्य का चिंतन करते हुए शांतिकुंज में अपने प्रारंभिक दिनों को गुजारने लगीं। उस समय का शांतिकुंज आज की तरह विस्तृत व्यापक न था, जहां आज अखण्ड दीप स्थापित है, बस यही दो-तीन कमरे बने थे । पानी के लिए एक कुआं था, एक गाय थी जिसके घी से परमपूज्य गुरुदेव की साधना से सिद्ध अखंड ज्योति दृश्य और अदृश्य को प्रकाशित करती थी। शांतिकुंज का समूचा वातावरण पुराणों में वर्णित प्राचीन तपस्वी ऋषियों के आश्रम की भांति था। तब यहां किसी का आना-जाना प्रायः नहीं ही होता था। बस मां की साधना ही यहां की समस्त गतिविधियों का केंद्र थी। उनकी इस साधना से ही समूचे गायत्री परिवार को प्राण व प्रकाश मिलता था।

आज का ज्ञानप्रसाद लम्बा होने के कारण हम इसे यहीं पर अल्पविराम देने के लिए विवश हैं, लेकिन अभी बहुत कुछ जानने को है, इससे भी कहीं अधिक रोचक, दिव्य एवं ज्ञानवर्धक।